ISSN 2249-894X Impact Factor : 3.1402 (UIF) Volume - 5 | Issue - 11 | August - 2016

Review Of Research

प्राचीन संगीत ग्रन्थों में वंशी का स्थान

डॉ॰ नीलिमा सिंह

सहायक प्रोफेसर, संगीत विभाग, एस डी महविद्यालय, हांसी, हिसार(हरियाणा)

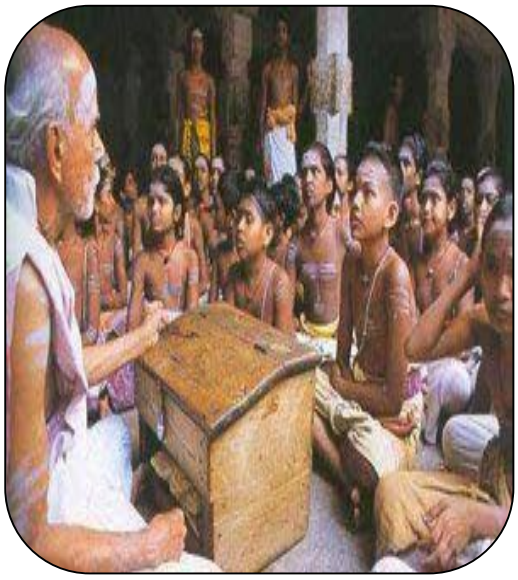

प्रस्तावना:-

वंशी की उत्पत्ति के सम्बंध में चर्चा की जाए तो इस सम्बंध में वैसे कोई ठोस प्रमाण तो नहीं मिलते लेकिन इतना अवश्य है कि इसकी उत्पत्ति का आधार भी कोई न कोई प्राकृतिक-स्रोत या जीव-जन्तु ही रहा होगा जहाँ से प्रेरणा पाकर तत्कालीन मानव ने ऐसे वाद्यों के निर्माण की बात सोची होगी। महाकवि कालिदास जी ने अपने ग्रंथ 'कुमार-सम्भव' में 'वंशी' वाद्य की उत्पत्ति की बात की है जिसमें उन्होंने लिखा है कि भौरों (जंगली कीड़े) द्वारा छिद्रित बंस-नली में तीव्र गति से प्रवाहित होने वाली वायु के प्रवेश होने पर मधुर ध्वनि की उत्पत्ति हो रही थी जिसे तत्कालीन मानव ने सुना और उससे काफी प्रभावित हुए और उन्होंने उस बाँस-वृक्ष से उस बाँस-नली को काटकर अलग कर लिया और अपने मुख द्वारा वायु भर कर उसका वादन करने का प्रयास किया होगा और बाद में उसे एक वाद्य के रूप में प्रचलित किया। अतः सम्भव है कि 'सुषिर' वाद्यों की उत्पत्ति इसी रूप में हुई होगी तथा धीरे-धीरे उनका विकास होता गया और परिणामस्वरूप वर्तमान समय में बहुत से 'सुषिर' वाद्य प्रकार हमारे समक्ष विद्यमान हैं।

डॉ0 सुनीरा कासलीवाल "Classical Musical Instruments" के वर्णनानुसार - Origin of Sushir-Vadaya is that Music exists in all human societies of the world. It may be in the most primitives stage of development or in an ultra-modern stage, the music has its own essential function in all societies.

सुषिर-वाद्यों के नामों का उल्लेख विभिन्न संगीत-ग्रंथों में मिलता है। 'संगीत-दामोदर' में वंशी, मधुरी, शंख, पारी, काहला, चुक्का, शृंग, सिंगा, मुरली, कापालिन-वंशी और तूर्य-वंशी का उल्लेख किया गया है। पं॰ अहोवल जी ने अपने ग्रंथ 'संगीत-पारिजात' में मुरली, पावा, सुनादी, शृंग, नागसर, मुखवीणा, वक्री, तुन्दकनी, काहली, शंख, पाविका, चंग और स्वर-सागर, की गणना सुषिर वाद्यों में की है।

पं॰ शारंगदेव जी ने अपने ग्रंथ 'संगीत-रत्नाकर' में वंशी, पावा, मुरली, काहल, तुण्डकिनी, पाविका, शृंग, चुक्का और शंख का वर्णन सुषिर वाद्यों के रूप में किया है।

ऋग्वेद काल में वंशी

'ऋग्वेद' में 'नाली' या 'नाड़ी' नामक वाद्य का उल्लेख मिलता है जिसे वंशी वाद्य का प्राचीनतम स्वरूप माना जाता है

इदं यमस्य सादनं देवमानं युदच्यते,
इयमस्य धम्यते नालीरयं गीर्भिः परिष्कृतः ।।[1]

भावार्थ यह है कि नाली या नाड़ी नरसल (नरकटा) से बना होता था। कालान्तर में इस वाद्य का निर्माण 'बाँस' से होने लगा, इस कारण इसे वंश वाद्य (बाँस की बनी हुई वंशी) कहा जाने लगा।

[1] ऋग्वेद, म0 10, 135, 7

सामवेद काल में वंशी

प्राचीन काल में 'सामवेद' की रचनाओं का गायन 'वीणा' और वेणु की संगति में होता था। इस कारण वंशी को बहुत शुभ वाद्य माना जाता था।[2] 'गरुड़-पुराण' के निम्नलिखित श्लोकों में वंशी को स्पष्ट रूप से शुद्ध वाद्य माना गया है।

वि प्रकन्य शतो रुद्रः शंख भेरी वसुन्धराः ।
वेणुस्त्री पूर्ण कुम्भानां यात्रायां दर्शनं शुभम् ।।[3]

''नारदीय शिक्षा'' नामक ग्रंथ में 'नारदमुनि' ने वैदिक संगीत और लौकिक संगीत के स्वरों के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए वंशी वाद्य का सहारा लिया।

''य सामगान प्रथमः स वेणोर्मध्यमः स्मृतः ।''[4]

विभिन्न ग्रन्थकारों के ग्रन्थों में बाँसुरी के विषय में चर्चा की गई है जो इस तरह से है-

नाट्यशास्त्र

प्राचीन काल का संगीत-विषयक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'भरत' मुनि द्वारा रचित 'नाट्य-शास्त्र' है। भरत ने संगीत को 'नाट्य' का अभिन्न अंग मानकर इसका उल्लेख इस ग्रंथ के 28 वें अध्याय से 33वें अध्याय तक किया है। भारतीय संगीत का यह आदि ग्रंथ है तथा इसे प्राचीन कालीन संगीत के सर्वाधिक प्रमाणित 'ग्रंथ' होने का गौरव प्राप्त है।

सुषिर-वाद्यों की वादन विधि 'नाट्यशास्त्र' के अध्याय 30 में निरूपित है। वंशी और कण्ठ में श्वास लेने वाले, छोड़ने के ढंग आदि साम्यता के कारण दोनों को समकक्ष समझा जाता रहा है।

चतुर्श्रुतिक, त्रिश्रुतिक, द्विश्रुतिक स्वरों की 'वंश' पर व्याख्या करने का अवश्य ही कोई महत्त्वपूर्ण कारण रहा होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि संगीत में गायन प्रमुख होने के कारण कण्ठ-ध्वनि द्वारा इस अभिव्यक्त नाद की सूक्ष्मताओं को वंशी पर सच्चे अर्थों से प्राप्त किया जा सका होगा। इसलिए क्रियात्मक-संगीत की सूक्ष्मताओं को व्यक्त करने के लिए इसी विधि का आश्रय लिया गया होगा।

भरत ने 'वेणु' का प्रयोग कण्ठ की संगति हेतु किया। संगीत का सिद्धान्त यह था कि गायक जिस स्वर का गायन करता था, उसी का अनुसरण 'वंश' पर किया जाता था। गायन, वीणा तथा वंश तीनों के स्वरों में सम्पूर्ण सामंजस्य संगीत की सफलता का निष्कर्ष माना गया।

'वेणु दण्ड प्रवेशक सिद्धा वंशाश्रिता स्वराः ।
यं यं गाता स्वरं मच्छेत् तंत वंशेन वादयेत् ।।
शरीर वंश वैणा नामे की भावः प्रशस्यते ।[5]

अर्थात् 'वंशी' वेणु-दण्ड से बनाई जाती थी। भरत कालीन वेणु-वादन, गायन की तान, मूर्च्छनाओं, तंत्र-गायन तथा वीणा पर आधारित था। भरत कालीन विशाल 'कुतुपों' में वंशी वादकों का प्रमुख स्थान रहा करता था। वाद्य-वृन्द में 'वंश' का अंगभूत मानकर शंख और डक्किनों आदि वाद्यों का भी प्रंसग है।

अंगलक्षण संयुक्तो विज्ञेया वंश एवहि ।
शंखस्तु डक्किनोंचैव प्रत्यंगे परिकीतिते ।।[6]

नाट्य में विभिन्न परिस्थितियों के वातावरण को उद्वेलित करने हेतु 'भरत' ने वाद्यों का प्रायोजन माना है। उनके कथनानुसार -

वेणु-वादकों के गुणों में उन्हें बलवान, अवहित बुद्धि वाला, गीतलय का ज्ञाता, सुसंगति में निपुण, श्रावक, मधुर, स्निग्ध एवं मजबूत हाथ वाला होना चाहिए।

'बलवाना हित बुद्धिर्गीतलवज्ञस्तथा सुसंगीतः ।
श्रावक मधुर स्निग्धों दृढ़ पाणि वैश कादको श्रेयः ।।[7]

इसके अतिरिक्त भरत मुनि ने अपने ग्रंथ में वंशी-वाद्य की विशेषताओं से भी अवगत कराया है।

---

2 गरूड़ पुराण, सातवां अध्याय, श्लोक संख्या 16
3 वही
4 ''नारदीय शिक्षा', 1/5/1
5 नाट्यशास्त्र, 30 वां अध्याय, आचार्य वृहस्पति, श्लोक संख्या–17
6 वही, (33वां अध्याय), श्लोक संख्या 21
7 नाट्यशास्त्र, 30 वां अध्याय, श्लोक संख्या–21

बृहद्देशी

लगभग 7वीं शताब्दी में 'मतंग' मुनि ने 'बृहद्देशी' नामक ग्रंथ की रचना की थी जिसके काल के विषय में थोड़ा मतभेद पाया जाता है, किन्तु स्वतन्त्र रूप से संगीत का प्रतिपादन करने वाले उपलब्ध ग्रन्थों में 'बृहद्देशी' का नाम सर्वोपरि है लेकिन दुर्भाग्यवश यह ग्रंथ अपने पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं होता है ।

'वंशे वैदिक निर्णयः एवं वंशे रस भावयोरेकीभावः' के अन्तर्गत मतंग मुनि ने वंशी पर विभिन्न स्वरों की वादन-विधि आदि का उल्लेख भरतोक्त ढंग से ही किया है। उनके कथनानुसार प्रसव के समय स्त्रियों के मन को जीतने के लिए एवं शोक के समय वंशीवाद्य पर मृदु और मध्यालय से युक्त ध्वनि का वादन करना चाहिए तथा क्रोध और अभिमान के अवसर पर द्रुतलय में कम्पित और स्फुरित ध्वनि का वादन करना चाहिए।

संगीत रत्नाकर

'संगीत-रत्नाकर' ग्रन्थ भारतीय संगीत के इतिहास में विशिष्ट स्थान रखता है इसमें वर्णित तथ्यों को बहुत महत्त्व दिया जाता है। पं. शारंगदेव जी ने भी 'सुषिर-वाद्यों' में केवल वांशिक एवं उसके फूत्कार के ही गुण-दोषों के विषय में विस्तृत विवरण किया है अर्थात् पं. शारंगदेव के काल में 'वेणु' वाद्य ही व्यवहृत होता था ।

पं. शारंगदेवानुसार वंशी 'खैर' की लकड़ी, हाथी दांत, चन्दन, लोहा, कांस्य आदि से निर्मित होती थी, जिसका दण्ड सरल, गोलाकार, चिकना तथा गाँठ रहित होता था। उन्होंने वंशी पर अंगुली रखने की विधि एवं स्वरोत्पत्ति के विषय में भी विस्तृत विवरण अपने ग्रंथ में प्रस्तुत किया है।

पं. शारंगदेव जी ने वंशी पर निम्नलिखित रागों की वादन-विधि का वर्णन किया है।

रागांग : मध्यमादि, मालवश्री, तोड़ी, बंगाल-भैरव, वराटी, गुर्जरी, बसन्त, देशी, धन्नासी।

भाषांग : डोम्बक्री वेवली, प्रथम मंजरी, आदि - कामदेविका शुद्ध वराटी, शुद्ध नट।

क्रियांग : रामक्री, गौडक्री, देवकी रीति।[8]

उपांग : भैरवी, छायानट, चिन्धमरामक्री, मल्हार, कनार्ट गौड, देशवाल गौड, तुरुष्कगौड़, द्रविड़ गौड।

भाषांग : कैशिकी, ललित, श्री राग।

'वंशी' पर इन रागों के ग्रह आदि स्वर 'वीणा' से अलग वर्णित किए गए हैं, जो वंशी-वादकों की राग संबंधी भिन्न परम्परा को दर्शाते हैं। सम्भवतः इन रागों का प्रयोग नृत्य की संगति में वेणु पर किया जाता था, इसलिए वे राग अपेक्षाकृत अधिक रंजक होंगे। वंशी में कभी-कभी धुनों को रंजक बनाने हेतु ऊँचे स्वर को षड्ज मानकर गाने की प्रथा भी रही है। 'नारद' के कथन में इस तथ्य को सत्यता मिलती है, उनका कथन है कि 'सामगान' का प्रथम जो कि 'वेणु' का मध्यम है, दो अर्थों को अभिव्यक्त करता है।

प्रथम :

यह लौकिक व वैदिक स्वरों में साम्य बताता है, अर्थात् 'सामगान' का प्रथम और वंशी का मध्यम एक ही है।

द्वितीय :

किन्तु दूसरे अर्थ में दोनों अलग-अलग हैं। वेणु पर मंद्र, सप्तक के स्वर कठिनाई से एवं अस्पष्ट बजते हैं। अतः यह तभी जान लिया कि वेणु द्वारा की गई अभिव्यक्ति कण्ठ-संगीत की अपेक्षा ऊँची होती है।

पं. शारंगदेव जी ने 15 प्रकार की वेणुओं का वर्णन प्रस्तुत किया है।[9] स्वर-रन्ध्रों को मुक्त रखकर जो 'नाद' उत्पन्न किया जाता था, उससे स्पष्ट है कि स्वरित या आधार स्वर की भावना उस समय प्रचलित थी। समीक्षकों ने वंश अथवा वेणु को आधार स्वर प्राप्त करने वाला या ध्वनि के मापदण्ड को बताने वाला वाद्य भी कहा है। संगीत इतिहास में वेणु वह प्रथम वाद्य है जिसने धुनों की अभिव्यक्ति दी, क्योंकि स्वरों के अवरोहात्मक क्रम व लम्बे स्वरान्तलों को वेणु पर सहजता से प्राप्त किया जा सकता है।

तंन्त्री (तत्) वाद्य अपने प्रारम्भिक रूप में 'स्वर-मंडल' के रूप में उभरकर आए और वेणु ने ही राग के विचार को पुष्टता प्रदान करने में सहायता दी। भारतीय संगीत की 'श्रुति' प्रधानता वंश पर प्रतिक्षण उपस्थित रहती है। वंशी भारतीय शास्त्रीय व लोक संगीत इन दोनों पद्धतियों का समन्वय शास्त्र व क्रिया में करती रही। पं. शारंगदेव ने भी 'वंश-प्रकरण' में अंगुली द्वारा फूँक से स्वर निकालने की विधि शास्त्र व लोक दोनों में समान बतायी है, किन्तु वेणु अपने उन्मुक्त स्वभाव के कारण शास्त्रीयता की परिधि में अधिक सीमित न रह सकी, इसलिए नारद, भरत, मतंग, शारंगदेव द्वारा विस्तृत चर्चा का विषय बनकर भी लोक संगीत का अभिन्न अंग बनी रही।

शास्त्र में प्रयुक्त सप्तक व स्वर सम्बन्धी सिद्धान्तों की पुष्टि क्रिया द्वारा होती है। क्रिया में प्रयुक्त आवश्यक आधारभूत स्वर-छिद्रों के कारण सरलता से जाने जा सकते हैं। इसी प्रकार 'जेम्स जीन' ने 'मिस्र' देश की दो बाँसुरियों

---

8 संगीत शास्त्र, श्री के0 बसुदेव शास्त्री, पृ0 269

9 The Flute, P. Sambamoorty, P. 42-43.

का उल्लेख करते हुए सप्त स्वरों की संप्राप्ति इस पर बतलाई जिसके स्वर सा, रे, ग, म, प, ध, नि है। यह प्राचीन 'ग्रीक' संगीत के 'सिनवोलायडियन स्केल' (Syntoly dian) के समान है।[10] ध्वनि द्विगुन रूप वेणु द्वारा ही उद्घाटित हो सका।[11] संगीत में उपस्वरों का ज्ञान वेणु के द्वारा ही हुआ है। इसमें फूँक के विभिन्न प्राबल्य से ही स्वर-छिद्र पर भिन्न-भिन्न स्वरों को अनुभूत किया जा सकता है।[12]

तेरहवीं शताब्दी के लगभग पं. शारंगदेव द्वारा लिखित 'संगीत रत्नाकर' नामक ग्रंथ के 'वाद्याध्याय' में वंशी पर विस्तृत विवेचन मिलता है। उस काल में वंशी वाद्य बाँस, खैर की लकड़ी, हाथी दाँत, चन्दन, रक्त चन्दन की लकड़ी, लोहा, कांसा, चाँदी और स्वर्ण से बनती थी।[13] पं. शारंगदेव ने फूत्कार (फूँक) के बारह (12) गुणों का उल्लेख किया है।

1.	स्निग्धता,	2.	घनता,	3.	रंजकता रक्ति,
4.	स्पष्टता (व्यक्ति)	5.	प्रचुरता	6.	लालित्य
7.	कोमलता,	8.	नादानुरणन	9.	त्रिस्थानत्व
10.	श्रावकत्व	11.	मधुरता,	12.	सावधानता[14]

उन्होंने फूत्कार के दोषों पर भी चर्चा की है तथा वंशीवादकों के गुण-दोषों पर समुचित प्रकाश डाला है।

पं. शारंगदेव ही ऐसे प्रथम ग्रंथकार हैं जिन्होंने बतलाया है कि 'वंशकवृन्द' में एक मुख्य वंशीवादक होता है और उसके चार अनुयायी वंशीवादक होते हैं। शारंगदेव ने वंशी वर्ग के निम्नलिखित तीन अन्य वाद्यों का उल्लेख किया है:-

पावः यह वंशीनिर्मित होता था, जिसकी लम्बाई नौ अंगुल होती थी।
पाविकाः यह भी वंशीनिर्मित होती थी, किन्तु उसकी लम्बाई बारह अंगुल होती थी।
मुरली : यह दो हाथों से थोड़ी लम्बी होती थी इसमें स्वरों को उत्पन्न करने के लिए चार छिद्र होते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त तीनों वाद्यों का सम्बन्ध लोक-संगीत से रहा होगा।

अभिनव भारती (अभिनव गुप्त):-

10वीं शताब्दी में 'काश्मीर' निवासी 'आचार्य अभिनव गुप्त' ने 'भरत मुनि' रचित 'नाट्य शास्त्र' पर 'अभिनव भारती' नामक एक विस्तृत एवं प्रमाणित टीका-गंथ लिखा था जिसके अनुसार 'वंशी' लोहा और खैर की लकड़ी से निर्मित होती थी ।

यथा:- 'वंश प्रकार रूप (लोहा) खादिरादेरपि संग्रहः।[15]

अभिनव गुप्त के अनुसार वंशी में कुल 9 रन्ध्र होते थे, जिनमें पहला अर्थात् मुखरन्ध्र तथा नौवा (अंतिम) रन्ध्र वायु पूरित एवं निर्गमन के लिए प्रयुक्त होता था। मुखरन्ध्र से प्रथम तीन रन्ध्र बायें हाथ की अंगुलियों से एवं अंतिम चार रन्ध्रों को दक्षिण हस्त की अंगुलियों से ढका जाता था।

'पार्श्वदेव' के अनुसार भरतमुनि द्वारा जय, विजय, नन्द और महानन्द चार प्रकार की वंशियाँ बताई गयी है।

वंशीधारण विधि

पं. शारंगदेवजी ने 'संगीत रत्नाकर' में वंशी पर अगुंली रखने की विधि भी बतायी है। उनके निर्देशानुसार दोनों हाथ अर्धचन्द्र या नागफन के समान स्थापित करने चाहिए।

अर्धचन्द्र

---

10 Science & Music, James Jean, P. 164
11 The Flute, P. Sambamoorty, P. 2.
12 'संगीत-रत्नाकर' वाद्याध्याय (6 अध्याय), श्लोक 424
13 'संगीत-रत्नाकर' वाद्याध्याय (छठा अध्याय), श्लोक 653-654
14 अभिनव भारती, अभिनव गुप्त (नाट्य शास्त्र पर अभिनव गुप्त की टीका) 30वाँ मअध्याय, पृ0 संख्या 140
15 'संगीत-रत्नाकर' (टीका ग्रंथ) सिंह भूपाल, अध्याय 6, श्लोक 448

'संगीत रत्नाकर' के 'नर्तनाध्याय' में 'अर्धचन्द्र' का स्पष्टीकरण इस प्रकार मिलता है। एक तरफ से अंगुलि-समूह द्वारा और दूसरी ओर पत्राकृति में अंगुष्ठा उंगली को स्थित करने पर चन्द्ररेखा की आकृति का आभास होता है, वह अर्धचन्द्र कहा जाता है -

यथा:- ''एकतोऽगुलिसंघाते यत्रा गुष्ठे स्थितेऽन्यत: ।
चन्द्ररेखाकृतिर्भाति सोऽर्धचन्द्रोऽभिधीयते ।।''
(श्लोक 117, सप्तम् नर्तनाध्याय)

नागफन

'नागफन' से तात्पर्य 'सर्पशिरा' नामक हस्त विशेष है। पताका की निम्नमध्य की स्थिति में किया गया हाथ 'सर्पशिरा' कहलाता है।यथा:-

''नागफण: सर्पशिरा नाम हस्तविशेष: ।
पताको निम्नमध्यो य: स तु सर्पशिरा कर ।।''
(श्लोक 152 - सप्तमेनर्तनाध्याये)

'सिंह भूपाल' जी ने अपने टीका ग्रंथ में मतान्तर का उल्लेख करते हुए कहा है कि अन्य मत के अनुसार स्वर की उत्पत्ति इस प्रकार होती है। बायाँ हाथ अर्धचन्द्र के समान विमुख होना चाहिए। बायें हाथ की मुक्त अनामिका उंगुली से 'षड्ज' उत्पन्न होता है। मध्यमा उंगली से ऋषभ, तर्जनी उंगली से गन्धार तथा दाहिने हाथ की कनिष्ठा उंगली से मध्यम, अनामिका उंगली से पंचम, मध्यमा उंगली से धैवत, तर्जनी उंगली से निषाद की प्राप्ति होती है। पं. शारंगदेव जी ने मन्द्र, मध्य तथा तार स्थान के स्वर प्राप्त किए जाने की प्रक्रिया का उल्लेख इस प्रकार किया है अर्थात् सुशिक्षित वादक द्वारा की गई फूत्कार से मध्य सप्तक में स्वर, वीणा अथवा शरीरोत्पन्न के समान उत्पन्न होता है।[16]

इस प्रकार विभिन्न ग्रंथकारों ने 'बाँसुरी' के सम्बंध में अपने ग्रंथों में उल्लेख एवं वर्णन किया है जिससे बाँसुरी के क्रमिक विकास के सम्बंध में काफी जानकारी प्राप्त होती है। निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में 'वंशी' का जो स्वरूप हमारे समक्ष है वह किसी एक काल या समय में विकसित नहीं हुआ है अपितु उसके पीछे एक शृंखलाबद्ध इतिहास रहा है, जिसके प्रमाण विभिन्न ग्रंथों में विभिन्न ग्रंथकारों द्वारा 'वंशी' के सम्बंध में किए वर्णन एवं व्याख्या के रूप में प्राप्त होते हैं।

16 'संगीत–रत्नाकर' सिंह भूपाल, अध्याय 6, श्लोक 448